AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

प्रवासी हिन्दी साहित्य का हिन्दी के विकास में योगदान

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. बलवीर
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिंदी विभाग
स्वामी शुकदेवानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय
शाहजहाँपुर, उत्तर प्रदेश, भारत

शोध सार

प्रवासी हिन्दी साहित्य अस्मिता, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक संघर्ष का प्रतिनिधि बना। अभिमन्यु अनत, विद्यानंद झा, शिवनाथ सिंह, सुभद्रा झा और अन्य साहित्यकारों ने इस धारा को गहराई दी। इनके साहित्य में केवल अपने अनुभव ही नहीं हैं बल्कि प्रवासी समाज के सामूहिक संघर्ष और अस्तित्व की रक्षा का जीवंत चित्रण भी है। इसी काल के प्रवासी साहित्य ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी भाषा किसी एक भूगोल तक सीमित नहीं है, बल्कि जहाँ भी भारतीय गए, वहाँ उनकी भाषा और संस्कृति भी गई और उसने हिन्दी साहित्य को नया रूप ही नहीं दिया बल्कि हिन्दी भाषा के विकास में महती भूमिका का भी निर्वाह किया जिसे कभी भुलाया नहीं जा सकता।

मुख्य शब्द

अस्मिता, वैशीकरण, गिरमिटिया, संवेदना, चेतना सांस्कृतिक संघर्ष.

प्रवासी साहित्य हिन्दी साहित्य की एक ऐसी धारा है जिसने न केवल भारतीय समाज और संस्कृति के वैश्विक विस्तार को अभिव्यक्त किया बल्कि मानवीय अनुभवों की सार्वभौमिकता को भी रेखांकित किया। जब हम इसके उद्भव और विकास की यात्रा पर दृष्टि डालते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि इसका बीज उस ऐतिहासिक प्रवास में निहित है जिसने लाखों भारतीयों को अपने देश से दूर जाने के लिए विवश किया। गिरमिटिया मजदूरों की पीड़ा और उनके गीतों में जो वेदना व्यक्त हुई, वही आगे चलकर प्रवासी साहित्य का आधार बनी।

बंगाल के प्रसिद्ध कवि रवींद्रनाथ टैगोर के ये सुंदर शब्द मानस पटल पर बरबस ही उभर आते है– "एक वटवृक्ष को जानने के लिए केवल उस मिट्टी को ही जानना काफी नही है जिसमें यह पनपता हैं बल्कि इसकी दूरस्थ अधिभूमि में इसकी बढ़ती विशालता को जानना भी जरूरी है तभी इसकी वास्तविक जिजीविषा को समझ सकते हैं। वटवृक्ष की शीतल छाया भी अपनी जन्मभूमि से बहुत आगे तक जाती है.. भारत परदेशों में भी जी सकता है और बढ़ सकता है..... राजनीतिक भारत नहीं, बल्कि आदर्श भारत।"[1]

वर्तमान युग में प्रवास का अर्थ कुछ भिन्न है। आज प्रवासी शब्द का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए किया जाता है, जो अपने देश, अपनी जन्मभूमि को छोड़कर बेहतर जीवन–निर्माण, शिक्षा, व्यवसाय या रोज़गार की तलाश में विदेशों में जाकर बसते हैं। प्रवासी जीवन केवल भौगोलिक परिवर्तन नहीं है, बल्कि यह सांस्कृतिक, भाषाई और सामाजिक अनुभवों का एक संगम है। प्रवासी व्यक्ति नए परिवेश को अपनाता है, किंतु साथ ही अपने मूल देश की स्मृतियों और परंपराओं को भी हृदय में संजोए रखता है।

हिन्दी साहित्य में प्रवासी साहित्य एक ऐसी सशक्त धारा के रूप में विकसित हुआ है जिसने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है। प्रवासी साहित्य' शब्द उस साहित्य को इंगित करता है जिसे उन लेखकों ने रचा है जो भारत भूमि से दूर विदेशी धरती पर रहते हुए भी अपनी जड़ों, अपनी भाषा और संस्कृति से गहरे रूप से जुड़े रहे। इस साहित्य में प्रवासियों के जीवन–संघर्ष, उनकी भावनाएँ, मातृभूमि के प्रति गहन लगाव, पहचान का संकट और बहुसांस्कृतिक अनुभवों का चित्रण मिलता है।

प्रवासी साहित्यकार भारत को याद करते हुए अपनी आँखों में पानी भर कर कहता हैः

''वही दिनवा जब याद आवेला अंखिया मेंः
भरेला पानी रे।
हिंदुस्तान से भागकर यही है अपनी
कहानी रे।
भाई छूटा, बाप छूटा और छूटी महतारी रे।
अरकटिया खूब भरमवलीस कहें पैसा कमैबू
भर–भर थाली रे।
वही चक्कड़ में पड़ गइली, बचवा याद आय गइल नानी रे।''[2]

आज globalization (वैश्वीकरण) और migration (प्रवास) के दौर में प्रवासी साहित्य का महत्व और भी बढ़ गया है। यह साहित्य न केवल प्रवासी भारतीयों की मानसिकता और संघर्षों का आईना है, बल्कि हिन्दी भाषा और साहित्य को विश्वव्यापी पहचान दिलाने का महत्वपूर्ण साधन भी है। प्रवासी लेखकों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से यह सिद्ध किया है कि भाषा और साहित्य की शक्ति सीमाओं और भौगोलिक दूरी से बंधी नहीं होती। प्रवासी हिंदी साहित्य विगत दो सौ वर्षों के दौरान भारत से बाहर गये और वहीं पर बसे लोगों का साहित्य है।

मॉरिशस, फिजी, सूरीनाम आदि देशों में प्रवास करने वाले भारतीयों की हिंदी भारत की परिनिष्ठित खड़ी बोली हिंदी नहीं है। उनकी हिन्दी में भोजपुरी, अवधी आदि बोलियों का अच्छा–खासा प्रभाव है। अलग–अलग देशों में इसका अलग–अलग नाम भी है। ''फीजी में यह फीजिषात, सुरीनाम में सरनामी तथा दक्षिण अफ्रीका में नेताली के नाम से जानी जाती है।''[3] लेकिन वस्तुतः वह हिन्दी ही है जो किंचित बदले रूप में। फ़िजी, मॉरीशस, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, गयाना, दक्षिण अफ़्रीका जैसे देशों में हिंदी भारतवंशियों के मध्य आज भी मातृभाषा के रूप में बोली जाती है तथा उसे वहाँ सम्मानित स्थान प्राप्त है, पर इनमें से कई देशों में हिंदी लुप्त होने के कगार पर है, जिसकी सुरक्षा के लिए आज प्रयत्न आवश्यक है। प्रवासी हिंदी साहित्य को लेकर हिंदी जगत में लंबे समय से विमर्श चलता आ रहा है। अनेक विद्वानों का मानना है कि व्यक्ति प्रवासी हो सकता है, किंतु भाषा प्रवासी नहीं होती। दूसरी ओर एक मत यह भी है कि जब कोई लेखक विदेश में रहते हुए हिंदी में सृजन करता है और अपनी रचनाओं में प्रवासी जीवन की परिस्थितियों, समस्याओं और अनुभवों का अंकन करता है, तो वह स्वतः प्रवासी हिंदी साहित्य कहलाता है।

प्रवासी साहित्य हिन्दी साहित्य की एक महत्वपूर्ण धारा है, जिसका उद्भव भारतीयों के विदेश गमन और वहाँ उनके स्थायी रूप से बस जाने के साथ हुआ। इतिहास गवाह है कि भारत से बाहर प्रवास का सिलसिला प्राचीन काल से ही चलता आया है किन्तु संगठित रूप से हिन्दी प्रवासी साहित्य का स्वरूप उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से विकसित हुआ, जब बड़ी संख्या में भारतीय मजदूरों को ब्रिटिश उपनिवेशों में ले जाया गया तब धीरे–धीरे शिक्षा, व्यवसाय और राजनीतिक कारणों से भी प्रवासियों का प्रवास बढ़ा और इस प्रकार प्रवासी साहित्य की धारा समृद्ध होती चली गई।

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही व्यापार, संस्कृति और धर्म का केंद्र रहा है। भारतीय व्यापारी समुद्री मार्गों से दक्षिण–पूर्व एशिया, श्रीलंका और अरब देशों तक जाते थे। वहाँ वे अपने साथ भारतीय भाषा और संस्कृति भी ले जाते थे। बौद्ध भिक्षुओं और सांस्कृतिक दूतों के कारण भी भारतीय सभ्यता का विस्तार विदेशों तक हुआ। यद्यपि

उस समय प्रवासी हिन्दी साहित्य का कोई सुव्यवस्थित स्वरूप नहीं था, परन्तु भारतीय संस्कृति के गीत, कथाएँ और धार्मिक साहित्य उस प्रवास का हिस्सा बने। ''प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन के अवसर पर मॉरीशस के कलाकारों द्वारा प्रस्तुत 'अंधा युग' नाटक एक बड़ी उपलब्धि मानी जाती है। मोहन महर्षि द्वारा निर्देशित नाटक अंधा युग के दो प्रदर्शन हुए थे। प्रथम प्रदर्शन धनवटे रंगमंदिर, नागपुर के सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों और गणमान्य अतिथियों के लिए आयोजित किया गया था। दिवस के सत्रों के बाद शाम का नाट्य–प्रदर्शन देखने के लिए हॉल दर्शको से खचाखचा भर गया।''[4] मध्यकाल में सूफी और संत कवियों के अनुयायी भी विदेशों में फैले, किन्तु हिन्दी साहित्य का संगठित प्रवासी रूप अभी सामने नहीं आया था।

प्रवासी साहित्य का वास्तविक विकास उन्नीसवीं शताब्दी के अंत से प्रारम्भ होता है। 1834 में दास–प्रथा समाप्त होने के बाद ब्रिटिश उपनिवेशों में श्रम की भारी आवश्यकता पड़ी। परिणामस्वरूप भारत से लाखों मजदूरों को अनुबंध (गिरमिट) के आधार पर मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद और गुयाना भेजा गया। इन मजदूरों को "गिरमिटिया मजदूर" कहा गया। इन मजदूरों का जीवन कठिनाई, शोषण और पीड़ा से भरा हुआ था। वे अपनी बोली–भाषा, गीत और कहावतों के माध्यम से अपनी वेदना व्यक्त करते थे। यही लोकगीत और लोककथाएँ आगे चलकर प्रवासी साहित्य की पहली कड़ी बने। मॉरीशस और फिजी जैसे देशों में भोजपुरी, अवधी और मगही बोलियों के लोकगीत आज भी मिलते हैं। "बिरहा", "कजरी", "सोहर" और "लोक–भजन" उस युग के भावनात्मक अभिलेख हैं। इन्हीं लोकधाराओं ने प्रवासी हिन्दी साहित्य की नींव रखी।

बीसवीं शताब्दी की शुरुआत के साथ प्रवासी भारतीयों में शिक्षा का प्रसार हुआ और वे साहित्य सृजन की ओर प्रवृत्त हुए। अब प्रवासी साहित्य केवल लोकगीतों तक सीमित नहीं रहा, बल्कि कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास के रूप में सामने आने लगा। मॉरीशस में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने में प्रवासी लेखकों का योगदान उल्लेखनीय रहा। यहाँ विद्यानंद विद्यानाथ झा, कन्हैयालाल और अभिमन्यु अनत जैसे साहित्यकार सामने आए। फिजी में भी हिन्दी साहित्य की मजबूत परंपरा बनी। शिवनाथ सिंह, सुभद्रा झा और अन्य रचनाकारों ने गिरमिटिया मजदूरों के संघर्ष को दर्ज किया। यहाँ के अखबार और पत्र–पत्रिकाएँ प्रवासी लेखन के प्रमुख माध्यम बने।

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का असर प्रवासी भारतीयों पर भी पड़ा। महात्मा गांधी ने स्वयं दक्षिण अफ्रीका में प्रवासियों के अधिकारों के लिए आंदोलन किया। उनके संघर्ष ने प्रवासी साहित्यकारों को प्रेरित किया। इस दौर में प्रवासी साहित्य केवल पीड़ा और स्मृति तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें राजनीतिक चेतना और सामाजिक सुधार की लहर भी दिखाई दी। निबंध, कविताएँ और लेख प्रवासी समाज में जागरूकता का माध्यम बने। 1947 के बाद प्रवास की प्रकृति बदली। अब प्रवास केवल मजदूरी या अनुबंध पर आधारित नहीं था, बल्कि शिक्षा, व्यवसाय, व्यापार और तकनीकी कारणों से भारतीय बड़ी संख्या में यूरोप, अमेरिका, कनाडा और खाड़ी देशों की ओर जाने लगे। इस नए प्रवास ने प्रवासी हिन्दी साहित्य को वैश्विक परिप्रेक्ष्य प्रदान किया।

डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, सूरजप्रकाश, सतीश गुर्जर जैसे साहित्यकारों ने अमेरिका और यूरोप में हिन्दी को जीवित ही नहीं रखा बल्कि विश्व स्तर पर हिन्दी को पहचान दिलाने में एतिहासिक भूमिका निभाई। डॉ. पुष्पिता अवस्थी ने अपने उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से प्रवासी स्त्री की अस्मिता और संघर्ष को विश्व पटल पर हिन्दी भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त किया। ''प्रवासी कथा–साहित्यकारों में ऐसे बहुत से नाम हैं उनकी रचनाओं को पढ़कर आप बखूबी अनुमान लगा लेंगे। आज भी विदेशों में रहते हुए भी वे दुनियाँ को भारतीय चश्मे से देखते हैं इसलिए उनका लेखन नयेपन के बावजूद भी पाठक के दिल के करीब होता है और मन को भाता है। अमेरिका में विगत 25 वर्षों से रह रही जानी मानी कथाकार सुधा ओम ढींगरा, सुषम बेदी, जकिया जुबैरी, नीना पॉल, दिव्या माथुर, उषा वर्मा, उषा राजे सक्सेना ने लेखिकाओं के रूप में अपनी महत्त्वपूर्ण पहचान बनाई है।''[5] सत्तर और अस्सी के दशक में बड़ी संख्या में भारतीय श्रमिक खाड़ी देशों (सऊदी अरब, दुबई, कतर आदि) गए। वहाँ की कठिन जीवन–स्थितियाँ, श्रम की कठोरता और परिवार से दूरी उनके साहित्य में दिखाई देती है।

आज प्रवासी साहित्य का स्वरूप और भी व्यापक हो गया है। वैश्वीकरण के कारण भारतीय लगभग हर देश

में फैले हुए हैं। उनकी रचनाओं में अब केवल संघर्ष और पीड़ा नहीं, बल्कि बहुसांस्कृतिक अनुभव, तकनीकी विकास और विश्व नागरिकता की अनुभूति भी शामिल है। हिन्दी साहित्य में उनका योगदान लगातार बढ़ रहा है।

निष्कर्ष

प्रवासी साहित्य प्रवासी जीवन का सार्थक उदघोस है। लेखकीय चेतना के संदर्भ में मार्कन्डेय कहते हैं कि ''सवाल समय का नहीं है, बल्कि उस आदमी का है जो आज के अपने सामाजिक–आर्थिक संदर्भ की सही उपज है। विचार की सही दिशा तो यह होगी कि इस सही उपज को देखकर ही संदर्भ का विश्लेषण किया जाये, क्योंकि मिट्टी और पौधे के समान उपज और व्यक्ति दो भिन्न तत्व नहीं है।''[6]

भारतवंशियों के रीति–रिवाज, परम्पराओं, मान्यताओं, साहस, परिवर्तन, अंधविश्वास, मानवीय संबंधों आदि की सहज अभिव्यक्ति प्रवासी साहित्य की विशेषताएँ हैं। प्रवासन के दर्द से गुजरने वाले प्रवासियों ने अपने देश की परिस्थितियों को अपने स्मृति पटल में बनाये रखा और उसकी अनुभवात्मक अनुभूति अपने साहित्य में प्रस्तुत की है। जब एक भारतीय विदेश जाता है तो उसके अपने सपने होते हैं कि वह विदेश जाकर धन–समृद्धि, सम्मान प्राप्त करेगा। अपने सपने को पूरा करने के लिए उसे कई कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। परदेशी की भाषा, रहन–सहन, खान–पान उसके लिए कष्टप्रद होता है। धीरे–धीरे वह विदेशी परिवेश में खुद को ढालने की कोशिश करता है, तब उसे अपने देश की याद आती है। उनके श्रम और संघर्ष की स्मृतियाँ केवल इतिहास की घटनाएँ नहीं थीं बल्कि एक जीवंत संवेदना थीं जिसने भाषा और संस्कृति को जीवित रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यही कारण है कि मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, त्रिनिदाद और गुयाना जैसे देशों में भारतीयता आज भी लोकगीतों और साहित्य में जीवित दिखाई देती है।

समय के साथ प्रवासी साहित्य का स्वरूप बदलता गया। अब यह साहित्य प्रवासी अस्मिता, सामाजिक चेतना और सांस्कृतिक संघर्ष का प्रतिनिधि बनने लगा। अभिमन्यु अनत, विद्यानंद झा, शिवनाथ सिंह, सुभद्रा झा और अन्य साहित्यकारों ने इस धारा को गहराई दी। इनके साहित्य में केवल अपने अनुभव ही नहीं थे बल्कि प्रवासी समाज के सामूहिक संघर्ष और अस्तित्व की रक्षा का जीवंत चित्रण भी था। इसी काल में प्रवासी साहित्य ने यह सिद्ध कर दिया कि हिन्दी भाषा किसी एक भूगोल तक सीमित नहीं है, बल्कि जहाँ भी भारतीय गए, वहाँ उनकी भाषा और संस्कृति भी गई और उसने साहित्य को नया रूप दिया।

इस नये प्रवास ने साहित्य को वैश्विक दृष्टि दी। यहाँ के साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में न केवल प्रवासी जीवन का यथार्थ चित्रण किया बल्कि बहुसांस्कृतिक अनुभवों, नई पीढ़ी की उलझनों और पहचान के संकट को भी शब्द दिए। डॉ. पुष्पिता अवस्थी जैसी साहित्यकारों ने प्रवासी स्त्री के प्रश्नों और संघर्षों को रेखांकित किया। खाड़ी देशों के साहित्यकारों ने वहाँ के कठिन श्रम, परिवार से दूर रहने की पीड़ा और सांस्कृतिक अलगाव को सामने रखा। इस प्रकार प्रवासी साहित्य एक बहुआयामी धारा के रूप में विकसित हुआ।

प्रवासी साहित्य का एक महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि इसने हिन्दी भाषा को सीमाओं से परे जाकर वैश्विक स्तर पर प्रतिष्ठित किया। मॉरीशस में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाने का श्रेय प्रवासी समाज को ही जाता है। अमेरिका और यूरोप में आयोजित होने वाले हिन्दी सम्मेलनों और साहित्यिक आयोजनों ने हिन्दी की वैश्विक पहचान को मजबूत किया। यह साहित्य न केवल प्रवासी भारतीयों की मानसिकता और संघर्षों का आईना है, बल्कि हिन्दी भाषा और साहित्य को विश्वव्यापी पहचान दिलाने का महत्वपूर्ण साधन भी है। प्रवासी लेखकों ने सिद्ध किया कि हिन्दी केवल भारत की भाषा नहीं बल्कि विश्व की भाषा है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रवासी हिन्दी साहित्यकारों नें हिन्दी के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

संदर्भ सूची

1. गंभीर, सुरेन्द्र (2017) *प्रवासी भारतीयों में हिन्दी की कहानी,* प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ, पृ. 61।
2. अमर सिंह रमण (सूरीनाम) (2006) *आप्रवासी यादगार (कविता),* कविताकोश प्रकाशन, kavitakosh.org, Accessed on 10/09/2025.
3. वर्मा, विमलेश कांति (2000) *फिजी में हिंदी स्वरूप और विकास,* पीताम्बरा प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. रामजियावन, महेश (2010) *प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलनः कुछ संस्मरण,* गंगाधर सुखलाल सिंह (संपा.) *विश्व हिन्दी पत्रिका,* मारीसस, लेख संख्या 35, पृ. 192।
5. पालीवाल, कृष्णदत्त (2014) *नारी–विमर्श की भारतीय परम्परा,* सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, दिल्ली, पृ.51।
6. सुरेंद्र (1996) *नई कहानी दशा, दिशा, सम्भावना,* अपोलो पब्लिकेशन, जयपुर, पृ. 287।

––==00==––